# तित्थयर

पंचदश वर्ष : जनवरी १९९२ : नवम अंक

जैन भवन

# तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र
वर्ष १५ : अंक ९
जनवरी १९९२

☐

संपादन
गणेश ललवानी
राजकुमारी बेगानी

☐

आजीवन : एक सौ एक
वार्षिक शुल्क : दस रुपये
प्रस्तुत अंक : एक रुपया

☐

प्रकाशक
जैन भवन
पी-२५ कलाकार स्ट्रीट
कलकत्ता-७००००७

☐

मुद्रक
सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स
२०५ रवीन्द्र सरणी
कलकत्ता-७

## सूची

उच्चैर्नागर शाखा के उत्पत्ति स्थल एवं उमास्वाति के जन्म स्थान की पहचान २५९
हिन्दी जैन भक्त कवियों की मधुर भावना २६६
बुन्देलखण्ड में नियमसार की पाण्डुलिपियों की खोज २७४
त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र २७७
संकलन २८६
जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या २८७

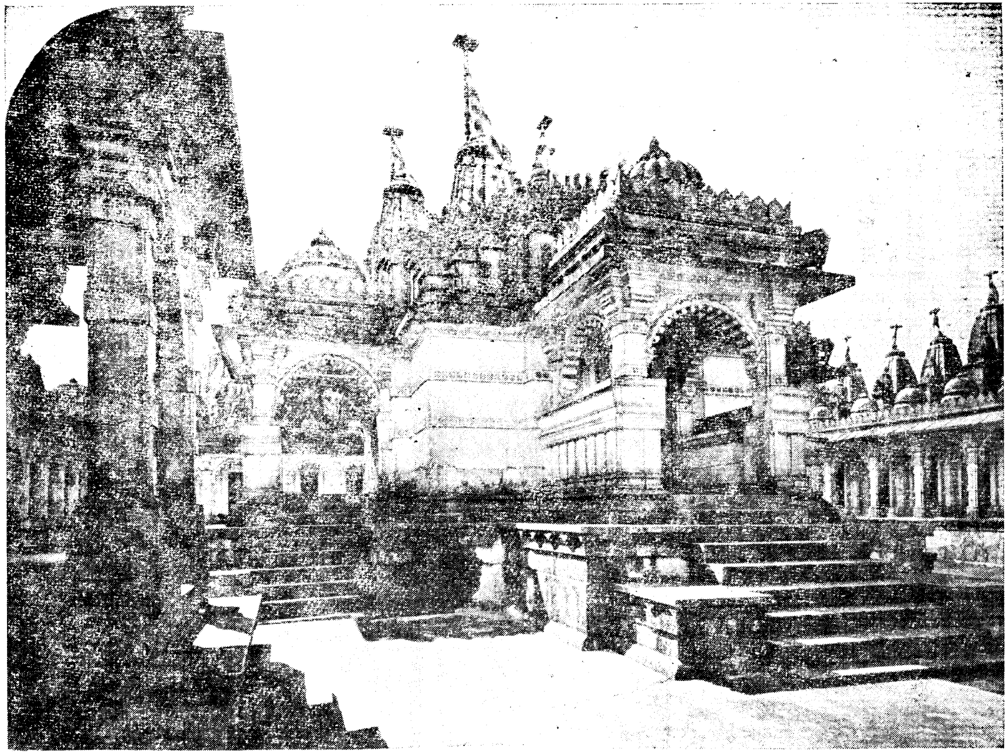

हेमाभाई भखत चंद का मन्दिर, शत्रुंजय, पालिताना

# उच्चैर्नागर शाखा के उत्पत्ति स्थल एवं उमास्वाति के जन्म स्थान की पहचान

प्रो० सागरमल जैन

तत्वार्थसूत्र के प्रणेता उमास्वाति ने तत्वार्थ भाष्य की अन्तिम प्रशस्ति में अपने को उच्चैर्नागर शाखा का कहा है तथा अपना जन्म-स्थान न्यग्रोधिका बताया है। प्रस्तुत आलेख का मुख्य उद्देश्य उच्चैर्नागर शाखा के उत्पत्ति स्थल एवं उमास्वाति के जन्म स्थल का अभिज्ञान (पहचान) करना है। उच्चैर्नागर शाखा का उल्लेख न केवल तत्वार्थ-भाष्य[1] में उपलब्ध होता है, अपितु श्वेताम्बर परम्परा में मान्य कल्पसूत्र की स्थविरावली[2] में तथा मथुरा के अभिलेखों[3] में भी उपलब्ध होता है। कल्पसूत्र स्थविरावली के अनुसार उच्चैर्नागर शाखा कोटिकगण की एक शाखा थी, मथुरा के २० अभिलेखों में कोटिकगण का तथा नौ अभिलेखों में उच्चैर्नागर शाखा का उल्लेख मिलता है। कोटिकगण कोटिवर्ष के निवासी आर्य सुस्थित से निकला था[4]। कोटिवर्ष की पहचान पुरातत्वविदों ने उत्तर बंगाल के दिनाजपुर से की है।[5] इसी कोटिकगण से आर्य शान्ति श्रेणिक से उच्चैर्नागर शाखा के निकलने का उल्लेख है। कल्पसूत्र के गण, कुल और शाखाओं के अध्ययन करने पर एक बात स्पष्ट हो जाती है कि गणों का और शाखाओं का सम्बन्ध व्यक्तियों की अपेक्षा मुख्यतया स्थानों या नगरों से अधिक रहा है। जैसे—वारण गण वारणावर्त से सम्बन्धित था, कोटिकगण कोटिवर्ष से सम्बन्धित था। यद्यपि कुछ गण व्यक्तियों से भी सम्बन्धित थे। शाखाओं में कौशम्बिया, कोडम्बानी, चन्द्रनागरी, माध्यमिका, सौराष्ट्रिका, उच्चैर्नागर आदि शाखाएं मुख्यतया नगरों से सम्बन्धित रही हैं। कुलों का सम्बन्ध मुख्य रूप से व्यक्तियों से रहा है।

उच्चैर्नागर शाखा का उत्पत्ति स्थल ऊँचेहरा (म० प्र०):

प्रस्तुत आलेख में मात्र हम उच्चैर्नागर शाखा के सन्दर्भ में ही चर्चा

---

[1] तत्त्वार्थभाष्य, अन्तिम प्रशस्ति, श्लोक ३, ५

[2] कल्पसूत्र, स्थविरावली, २१८

[3] जैन शिलालेख संग्रह, भाग २, लेख क्रमांक, १९, २०, २२, २३, ३१, ३५, ३६, ५०, ६४, ७१

[4] कल्पसूत्र, स्थविरावली, २१६

[5] ऐतिहासिक स्थानावली (ले० विजयेन्द्र कुमार माथुर), पृ० २३१

करेंगे। विचारणीय प्रश्न यह है कि वह उच्चनगर कहाँ स्थित था, जिससे यह शाखा निकली थी। मुनि श्री कल्याणविजयजी और हीरालाल कापड़िया ने कनिंघम को आधार बताते हुए इस उच्चैर्नागर शाखा का सम्बन्ध वर्तमान बुलन्दशहर से जोड़ने का प्रयत्न किया है। पं० सुखलालजी ने भी तत्त्वार्थ की भूमिका में इसी का अनुसरण किया है। कनिंघम लिखते हैं कि "बरण या बारण यह नाम हिन्दू इतिहास में अज्ञात है। 'बरण' के चार सिक्के बुलन्द-शहर से प्राप्त हुए हैं। मुसलमान लेखकों ने इसे बरण कहा है। मैं समझता हूँ कि यह वही जगह होगी और इसका नामकरण राजा अहिबरण के नाम के आधार पर हुआ होगा जो कि तोमर वंश से सम्बन्धित था और जिसने यह किला बनवाया था, किन्तु उसकी तिथि ज्ञात नहीं है। यह किला बहुत पुराना है और एक ऊँचे टीले पर बना हुआ है जिसके आधार पर हिन्दुओं द्वारा यह ऊँचा गाँव या ऊँचा नगर कहा गया है और मुसलमानों ने उसे बुलन्दशहर कहा है।"[६] यद्यपि कनिंघम ने कहीं भी इसका सम्बन्ध उच्चैर्नागर शाखा से नहीं बताया, किन्तु उनके द्वारा बुलन्दशहर का ऊँचा नगर के रूप में उल्लेख होने से मुनि कल्याणविजयजी और कापड़ियाजी ने तथा बाद में पं० सुखलालजी ने उच्चैर्नागर शाखा को बुलन्दशहर से जोड़ने का प्रयास किया। यद्यपि प्रो० कापड़िया ने अपना कोई स्पष्ट अभिमत नहीं दिया है। वे लिखते हैं कि "इस शाखा का नामकरण किसी नगर के आधार पर ही हुआ होगा किन्तु इसकी पहचान अपेक्षाकृत कठिन है क्योंकि बहुत सारे ऐसे ग्राम और शहर हैं जिनके अन्त में 'नगर' नाम पाया जाता है। वे आगे भी लिखते हैं कि कनिंघम का विश्वास है कि यह ऊँचानगर से सम्बन्धित होगी।"[७] चूँकि कनिंघम ने आर्कियोलाजिकल सर्वे आफ इण्डिया के १४वें खण्ड में बुलन्दशहर का समीकरण ऊँचा नगर से किया था। इसी आधार पर मुनि कल्याण विजयजी ने यह लिख दिया कि "ऊँचा नगरी शाखा प्राचीन ऊँचा नगरी से प्रसिद्ध हुई थी। ऊँचा नगरी को आजकल बुलन्दशहर कहते हैं।"[८] इस सम्बन्ध में पं० सुखलालजी का कथन है कि—

"'उच्चैर्नागर' शाखा का प्राकृत नाम 'उच्चानागर' मिलता है। यह शाखा किसी ग्राम या शहर के नाम पर प्रसिद्ध हुई होगी, यह तो स्पष्ट दीखता है।

---

६ Archaeological Survey of India, Vol. 14, p. 147

७ तत्त्वार्थाधिगमसूत्रम् (द्वितीयोविभाग), इण्ट्रोडक्सन, हीरालाल कापड़िया, पृ० ६

८ पट्टावली पराग संग्रह (मुनि कल्याण विजय), पृ० ३७

परन्तु यह ग्राम कौन-सा था, यह निश्चित करना कठिन है। भारत के अनेक भागों में 'नगर' नाम के या अन्त में 'नगर' शब्दवाले अनेक शहर तथा ग्राम हैं। 'बड़नगर' गुजरात का पुराना तथा प्रसिद्ध नगर है। बड़ का अर्थ मोटा (विशाल) और मोटा का अर्थ कदाचित् ऊँचा भी होता है। लेकिन गुजरात में बड़नगर नाम भी पूर्वदेश के उस अथवा उस जैसे नाम के शहर से लिया गया होगा, ऐसी भी विद्वानों की कल्पना है। इससे उच्चनागर शाखा का बड़नगर के साथ ही सम्बन्ध है, यह जोर देकर नहीं कहा जा सकता। इसके अतिरिक्त जब उच्चनागर शाखा उत्पन्न हुई, उस काल में बड़नगर था या नहीं और था तो उसके साथ जैनों का कितना सम्बन्ध था, यह भी विचारणीय है। उच्चनागर शाखा के उद्भव के समय जैनाचार्यों का मुख्य विहार गंगा-यमुना की तरफ होने के प्रमाण मिलते हैं। अतः बड़नगर के साथ उच्चनागर शाखा के सम्बन्ध की कल्पना सबल नहीं रहती। इस विषय में कनिंघम का कहना है कि यह भौगोलिक नाम उत्तर-पश्चिम प्रान्त के आधुनिक बुलन्दशहर के अन्तर्गत 'उच्चनगर' नाम के किले के साथ मेल खाता है।"[९]

किन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि ऊँचानगर शाखा का सम्बन्ध बुलन्दशहर से तभी जोड़ा जा सकता है जब उसका अस्तित्व ई० पू० के प्रथम शताब्दी के लगभग रहा हो। मात्र यही नहीं उस काल में वह ऊँचानगर कहलाता भी हो। इस शताब्दी के प्राचीन 'बरण' नाम का उल्लेख तो है, किन्तु यह भी ६-१०वीं शताब्दी से पूर्व का ज्ञात नहीं होता है। बारण (बरण) नाम से कब इसका नाम बुलन्दशहर हुआ, इसके सम्बन्ध में उन्होंने अपनी असमर्थता व्यक्त की है। यह हिन्दुओं के द्वारा ऊँचागाँव या ऊँचानगर कहा जाता था—मुझे तो यह भी उनकी कल्पना ही प्रतीत होती है। इस सम्बन्ध में वे कोई भी प्रमाण प्रस्तुत नहीं कर सके हैं। बरण नाम का उल्लेख भी मुस्लिम इतिहासकारों ने दशवीं सदी के बाद ही किया है।[१०] इतिहासकारों ने इस ऊँचागांव किले का सम्बन्ध तोमर वंश के राजा अहिवरण से जोड़ा है अतः इसकी अवस्थिति ईसा के पांचवीं-छठी शती से पूर्व तो सिद्ध ही नहीं होती है। यहाँ से मिले सिक्कों पर 'गोवितसबाराणये' ऐसा उल्लेख

---

९ तत्त्वार्थसूत्र, (विवेचक पं० सुखलाल संघवी), प्रकाशक पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध संस्थान, वाराणसी, पृ० ४

१० ऐतिहासिक स्थानावली, पृ० ६०८, ६४०

है।[११] स्वयं कनिंघम ने भी यह सम्भावना व्यक्त की है कि इन सिक्कों का सम्बन्ध वारणाव या बारणावत से रहा होगा।[१२] बारणावर्त का उल्लेख महाभारत में भी है जहाँ पाण्डवों ने हस्तिनापुर से निकलकर विश्राम किया था तथा जहाँ उन्हें जिन्दा जलाने के लिये कौरवों द्वारा लाक्षागृह का निर्माण करवाया गया था।[१३] बारणावा (बारणावत) मेरठ से १६ मील और बुलन्द-शहर (प्राचीन नाम बरन) से ५० मील की दूरी पर हिंडोना और कृष्णा नदी के संगम पर स्थित है। मेरी दृष्टि में बारणावत वहीं है जहाँ से जैनों का 'बारणगण' निकला था। बारणगण का उल्लेख भी कल्पसूत्र स्थविरावली एवं मथुरा के अभिलेखों में उपलब्ध होता है[१४] अतः बुलन्दशहर (बरन) या बारणावत (बारणावर्त) का सम्बन्ध बारणगण से हो सकता, न कि उच्चैर्नागरी शाखा से जो कि कोटिकगण की शाखा थी। अतः हमें इस भ्रान्ति का निराकरण कर लेना चाहिए। उच्चैर्नागर शाखा का सम्बन्ध किसी भी स्थिति में बुलन्दशहर से नहीं हो सकता है।

यह सत्य है कि उच्चैर्नागर शाखा का सम्बन्ध किसी ऊँचानगर से ही हो सकता है। इस सन्दर्भ में हमने इससे मिलते-जुलते नामों की खोज प्रारम्भ की। हमें ऊँचाहार, ऊँचडीह, ऊँचीबस्ती, ऊँचौलिया, ऊँचाना, ऊँचेहरा आदि कुछ नाम प्राप्त हुए।[१५] हमें इस नामों में ऊँचाहारा (म० प्र०) और ऊँचेहरा (म० प्र०) ये दो नाम अधिक निकट प्रतीत हुए। ऊँचाहार की सम्भावना भी इसलिए हमें उचित नहीं लगी कि उसकी प्राचीनता के सन्दर्भ में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। अतः हमने ऊँचेहरा को ही अपनी गवेषणा का विषय बनाना उचित समझा। ऊँचेहरा मध्यप्रदेश के सतना जिले के सतना स्टेशन से ११ कि० मी० दक्षिण की ओर स्थित है। ऊँचेहरा से ७ कि०मी० उत्तर पूर्व की ओर भरहुत का प्रसिद्ध स्तूप स्थित है, इससे इस स्थान की प्राचीनता का भी पता लग जाता है। वर्तमान ऊँचेहरा से लगभग दो कि०मी० की दूरी पर पहाड़ के पठार पर यह प्राचीन नगर स्थित था, इसी से इसका ऊँचानगर नामकरण भी सिद्ध होता है। यहाँ के

---

११ Archaeological Survey of India, Vol. 14, p. 147

१२ वही

१३ ऐतिहासिक स्थानावली, पृ० ८४३-४४

१४ कल्पसूत्र, स्थविरावली २१२

१५ ऊँचछ नामक अन्य नगरों के लिए देखिए—The Ancient Geography of India, pp. 204-205

नगर निवासियों ने मुझे यह भी बताया कि पहले यह उच्चकल्पनगरी कहा जाता था और यहाँ से बहुत सी पुरातात्विक सामग्री भी मिलती थी। यहाँ से गुप्तकाल अर्थात् ईसा की पांचवीं शती के कई महाराजाओं के कई दानपत्र प्राप्त हुए। इन ताम्र दानपत्रों में उच्चकल्प (उच्छकल्प) का स्पष्ट उल्लेख है, ये दानपत्र गुप्त सं० १५६ से गुप्त सं० २०९ के बीच के हैं। (विस्तृत विवरण के लिये देखें ऐतिहासिक स्थानावली—विजयेन्द्र कुमारमाथुर पृ० २६०-२६१) इससे इस नगर की गुप्तकाल में तो अवस्थिति स्पष्ट हो जाती है। पुनः जिस प्रकार विदिशा के समीप साँची का स्तूप निर्मित हुआ था उसी प्रकार इस उच्चैर्नगर (ऊँचेहरा) के समीप भरहुत का स्तूप निर्मित हुआ था और यह स्तूप ई० पू० दूसरी या प्रथम शती का है। इतिहासकारों ने इसे शुंग काल का माना है। भरहुत के स्तूप के पूर्वी तोरण पर 'वाच्छिपुत धनभूति का' उल्लेख है।[१६] पुनः अभिलेखों में 'सुगनंरजे' ऐसा उल्लेख होने से शुंग काल में इसका होना सुनिश्चित है।[१७] अतः उच्चैर्नागर शाखा का स्थापना काल (लगभग ई० पू० प्रथम शती) और इस नगर का सत्ता काल समान ही है। अतः इसे उच्चैर्नागर शाखा का उत्पत्ति स्थल मानने में काल की दृष्टि से कोई बाधा नहीं है। अतः ऊँचेहरा (उच्चकल्पनगर) एक प्राचीन नगर था इसमें अब कोई सन्देह नहीं रह जाता है। यह नगर वैशाली या पाटलिपुत्र से वाराणसी होकर भरूकच्छ को जाने वाले अथवा श्रावस्ती से कौशाम्बी होकर विदिशा, उज्जैनी और भरूकच्छ जाने वाले मार्ग पर स्थित था। इसी प्रकार वैशाली-पाटलिपुत्र से पद्मावती (पवाया), गोपाद्री (ग्वालियर) होता हुआ मथुरा जाने वाले मार्ग पर भी इसकी अवस्थिति थी। उस समय गंगा और जमुना के दक्षिण से होकर जाने वाला मार्ग ही अधिक प्रचलित था क्योंकि इसमें बड़ी नदियाँ नहीं आती थी, मार्ग पहाड़ी होने से कीचड़ आदि भी अधिक नहीं होता था। जैन साधु प्रायः यही मार्ग अपनाते थे।

प्राचीन यात्रा मार्गों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि ऊँचानगर की अवस्थिति एक प्रमुख केन्द्र के रूप में थी। यहाँ से कौशाम्बी, प्रयाग, वाराणसी, पाटलीपुत्र, विदिशा, मथुरा आदि सभी ओर मार्ग जाते थे। पाटलिपुत्र से गंगा-यमुना आदि बड़ी नदियों को बिना पार किये जो प्राचीन स्थल मार्ग था उसके केन्द्र नगर के रूप में उच्चकल्पनगर (ऊँचानगर) की स्थिति सिद्ध होती है। यह एक ऐसा मार्ग था जिसमें कहीं भी कोई बड़ी

---

१६ भरहुत (डॉ० रमानाथ मिश्र), भूमिका, पृ० १८
१७ वही, पृ० १८-१९

नदी नहीं आती थी अतः सार्थ निरापद समझकर इसे ही अपनाते थे। प्राचीन काल से आज तक यह नगर धातुओं के मिश्रण के बर्तन हेतु प्रसिद्ध रहा है। आज भी वहाँ काँसे के बर्तन सर्वाधिक मात्रा में बनते हैं। ऊँचेहरा का उच्चैर शब्द से जो ध्वनि साम्य है वह भी हमें इसी निष्कर्ष के लिए बाध्य करता है कि उच्चैर्नागर शाखा की उत्पत्ति उसी क्षेत्र से हुई थी।

उमास्वाति का जन्म स्थान नागोद (म० प्र०) :

उमास्वाति ने अपना जन्म स्थान न्यग्रोधिका बताया है। इस सम्बन्ध में भी विद्वानों ने अनेक प्रकार के अनुमान किये हैं। चूँकि उमास्वाति ने तत्वार्थभाष्य की रचना कुसुमपुर (पटना) में की थी[१८] अतः अधिकांश लोगों ने उमास्वाति के जन्मस्थल की पहचान उसी क्षेत्र में करने का प्रयास किया है। न्यग्रोध को वट भी कहा जाता है। इस आधार पर पहाड़पुर के निकट बटगोहली, जहाँ से पंचस्तूपान्वय का एक ताम्र लेख मिला है, से भी इसका समीकरण करने का प्रयास किया है। मेरी दृष्टि में ये धारणाएं समुचित नहीं हैं। उच्चैर्नागर शाखा जो ऊँचेहरा से सम्बन्धित थी उसमें उमास्वाति के दीक्षित होने का अर्थ यही है कि वे उसके उत्पत्ति स्थल के निकट ही कहीं जन्मे होंगे। उच्चैर्नगर या ऊँचेहरा से मथुरा, जहाँ उच्चनागरी शाखा के अधिकतम उल्लेख प्राप्त हुए हैं, तथा पटना जहाँ उन्होंने तत्त्वार्थभाष्य की रचना की, दोनों ही लगभग समान दूरी पर अवस्थित रहे हैं। वहां से दोनों लगभग ४५० कि० मी० की दूरी पर अवस्थित है और किसी जैन साधु के द्वारा वहाँ से एक माह की पदयात्रा कर दोनों स्थलों पर आसानी से पहुँचा जा सकता है। स्वयं उमास्वाति ने ही लिखा है कि वे विहार (पदयात्रा) करते हुए कुसुमपुर (पटना) पहुँचे थे। (विहरतापुरवे कुसुमनाम्नि)[१९] इससे यही लगता था कि न्यग्रोध (नागोद) कुसुमपुर (पटना) के समीप नहीं था। डॉ० हीरालाल जैन ने संघ विभाजन स्थल—रहवीरपुर की कल्पना दक्षिण में महाराष्ट्र के अहमदनगर जिले के राहुरी ग्राम से की और उसी के समीप स्थित 'निधोज' से की किन्तु यह ठीक नहीं है।[२०] प्रथम तो व्याकरण की

---

[१८] तत्त्वार्थसूत्र, पृ० ५

[१९] तत्त्वार्थाधिगमसूत्र, स्वोपज्ञ भाष्य, अन्तिम प्रशस्ति, श्लोक ३

[२०] दिगम्बर जैन सिद्धान्त दर्शन, प्रका० दिगम्बर जैन पंचायत, बम्बई, दिसम्बर १९४४ में मुद्रित 'जैन इतिहास का एक विलुप्त अध्याय' नामक प्रो० हीरालाल जैन का लेख, पृ० ७

दृष्टि से न्यग्रोध का प्राकृत रूप नागोद होता है, निधोज नहीं। दूसरे उमास्वाति जिस उच्चैर्नागर शाखा के थे वह शाखा उत्तर भारत की थी, अतः उनका सम्बन्ध उत्तर भारत से ही है। अतः उनका जन्म स्थल भी उत्तर भारत में ही होगा। उच्चनागरी शाखा के उत्पत्ति स्थल ऊचेहरा से लगभग ३० कि० मी० पश्चिम की ओर 'निगोद' नामक कस्बा आज भी है। आजादी के पूर्व यह एक स्वतन्त्र राज्य था और ऊँचेहरा इसी राज्य के अधीन आता था। नागोद के आसपास भी जो प्राचीन सामग्री मिली है उससे यही सिद्ध होता है कि यह भी एक प्राचीन नगर था। प्रो० के० डी० बाजपेयी नागोद से २४ कि० मी० दूर नचना के पुरातात्त्विक महत्व पर विस्तार से प्रकाश डाला है।[२१] नागोद की अवस्थिति पन्ना (म० प्र०), नचना और ऊँचेहरा के मध्य है। इन क्षेत्रों में गुप्तकाल के पूर्व शुंगकाल से पूर्व ९वीं-१०वीं शती तक की पुरातात्विक सामग्री मिलती है अतः इसकी प्राचीनता में सन्देह नहीं किया जा सकता है। नागोद न्यग्रोध का ही प्राकृत रूप है अतः सम्भावना यही है कि उमास्वाति का जन्मस्थल यही नागोद था और जिस उच्चनागरी शाखा में वे दीक्षित हुए थे, वह भी उसी के समीप स्थित ऊँचेहरा (उच्चकल्प नगर) से उत्पन्न हुई थी। तत्त्वार्थभाष्य की प्रशस्ति में उमास्वाति की माता को वात्सी कहा गया है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि वर्तमान नागोद और ऊँचेहरा दोनों ही प्राचीन वत्स देश के अधीन ही थे। भरहुत और इस क्षेत्र के आसपास जो कला का विकास देखा जाता है वह कौशम्बी अर्थात् वत्सदेश के राजाओं के द्वारा किया गया था। ऊँचेहरा वत्सदेश के दक्षिण का एक प्रसिद्ध नगर था। भरहुत के स्तूप के निर्माण में भी वात्सी गोत्र के लोगों का महत्वपूर्ण योगदान था, ऐसा वहाँ से प्राप्त अभिलेखों से प्रमाणित होता है। भरहुत के स्तूप के पूर्वी तोरण द्वार वाच्छीपुत्त धनभूति का उल्लेख है।[२२] अतः हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि उमास्वाति का जन्मस्थल नागोद (न्यग्रोध) है और उसकी उच्चैर्नागर शाखा का उत्पत्ति स्थल ऊँचेहरा ही है।

---

[२१] संस्कृति सन्धान (सम्पा० डॉ० झिनकू यादव) वाल्यूम III, १९९० में मुद्रित 'बुन्देलखण्ड की सांस्कृतिक धरोहर : नचना' नामक प्रो० कृष्णदत्त बाजपेयी का लेख, पृ० ३१

[२२] भरहुत, भूमिका, पृ० १८

# हिन्दी जैन भक्त कवियों की मधुर भावना

डॉ० श्री रंजन सूरिदेव

हिन्दी जैन भक्ति-काव्य शान्तरस का मूर्त्त रूप है। इसलिए यह स्वाभाविक है कि जैन भक्त कवि ज्ञान और वैराग्य की ही अहोरात्र चर्चा करें। किन्तु यह बात बिलकुल सही नहीं है कि जैन भक्ति-काव्य केवल ज्ञानमार्गी शाखा की प्रखरता और रूक्षता से ही भरा हुआ है, अपितु मनोयोग-पूर्वक अध्ययन करनेवालों ने जैन भक्ति-काव्य में पुष्टिमार्गी माधुर्य भावना के प्राचुर्य को भी प्राप्त किया है। साहित्येतिहासिक दृष्टि से हिन्दी जैन भक्ति-काव्य की माधुर्य-धारा विक्रम की पन्द्रहवीं शती से अधिक वेग से प्रवाहित दृष्टिगत होती है।

अभयदेवसूरि की परम्परा में तिलकसूरि के शिष्य राजशेखरसूरि ( वि० सं० १४०५) ने अपनी प्रसिद्ध हिन्दी-कृति 'नेमिनाथ फागु' में राजिमती (राजुल) के वर्णन में उसकी शृंगारमधुर मूर्त्ति की बड़ी सरसता के साथ अवतारणा की है। 'नेमिनाथ फागु' में बाईसवें तीर्थंकर नेमिनाथ और उनकी भावी पत्नी राजुल की वेधक कथा का काव्यमय चित्रण किया गया है। नेमिनाथ कृष्ण के छोटे भाई थे। जूनागढ़ के राजा उग्रसेन की कन्या राजि-मती (राजुल) के साथ उनका विवाह निश्चित हुआ। बरात जब राजुल के दरवाजे पर लगी, तब वहाँ उन्हें बरातियों के भोज्य-स्वागत के लिए एकत्र किये गये पशुओं के करुण क्रन्दन सुनाई पड़े। उनका हृदय दयार्द्र हो आया। उन्होंने विवाह से विरत होकर वैराग्य ले लिया और गिरिनार-पर्वत पर तप करने चले गये। राजुल ने भी दूसरा विवाह नहीं किया और नेमिनाथ के भक्तिपूर्ण विरह में सारा जीवन बिता दिया।

'नेमिनाथ फागु' सत्ताईस पदों का छोटा-सा खण्ड-काव्य है। इसमें नेमिनाथ की भक्ति की प्रधानता है। दृश्यों को कवि ने बड़ी रसिकता और व्युत्पन्नता से शब्दित किया है। विवाह के लिए सजित राजुल का एक सरस चित्र :

किम किम राजलदेवि तणउ सिणगारू भणेवउ।
चंपइगोरी अइधोई अंगि चंदनु लेवउ॥
खुंपु भराविउ जाइ कुसुम कस्तूरी सारी।
सीमंतइ सिंदूररेह मोतीसरि सारी॥

नवरंगि कुंकुमि तिलय किय रयण तिलउ तसु भाले।
मोती कुंडल कन्नि थिय बिंबालिय कर जाले।।
नरतिय कज्जलरेह नयणि मुँह कमलि तंबोलो।
नागोदर कंठलउ कंठि अनुहार विरोलो।।
मरगद जादर कंचुयउ फुड फुल्लह माला।
करे कंकण मणिवलउ चूड खलकावइ बाला।।
रूणुझुणु रूणुझुणु रूणुणएं कडि घाघरियाली।
रिमझिमि रिमझिमि रिमिझिमिएं पय नेउर जुयली।।
नहिं अलत्तउ वलवत्तउ से अंसुय किमिसि।
अखंडियाली रायमइ पिउजो अइ मनरसि।।

अर्थात्, राजुल चम्पक-कली की भाँति गोरी है। उसके शरीर पर चन्दन का लेप है। सीमन्त में सिन्दूर की रेखा खिंची है। नवरंगी कुंकुम का तिलक भाल पर विराजमान है। मोतियों के कुण्डल कान में सुशोभित हैं। मुख-कमल पान की लालिमा में रंजित है। कण्ठ में हार विलस रहा है। कंचुकी में कसा यौवन और उस पर पड़ी मनोज्ञ माला, हाथों में कंकण और खनकती मणिमय चूड़ियों में जैसे आज भी राजुल का विवाहोत्सव फूट पड़ता है। उसकी घाघरी की रूनझुन और पायजेब की रिमझिम तो आज भी कानों में पड़ रही है। उसकी रागारूण आँखें मन में विराजित अपने पति को देख रही हैं।

हिन्दी जैन भक्तिकाव्य के ख्यातयशा विद्वान् डॉ० प्रेमसागर जैन ने कहा है कि राजुल की यह अंग शोभा 'राधासुधानिधि' में वर्णित राधा की शोभा से बहुशः साम्य रखती है। रचना-प्रकार की दृष्टि से भी राजुलवर्णपरक उपर्युक्त पद का स्वर उसी प्रकार की सरसता से आप्लुत है, जिस प्रकार 'राधासुधानिधि' के राधावर्णपरक पदों का। मानो, साक्षात् राधा ने अपनी मोहिनी मूर्त्ति राजुल में अन्तर्निविष्ट कर दी हो और राजुल राधा की प्रतिमूर्ति बन गई हो एवं उसकी रूपमाधुरी विश्व के कण-कण में आ रमी हो।

नेमिनाथ के विवाह-विमुख हो गिरिनार पर चले जाने की बात सुनकर राजुल बेचैन हो उठी। उस समय की राजुल की कातरता सत्रहवीं शती में हेमविजय (वि० सं० १६७०) की लेखनी द्वारा बड़ी निपुणता से शब्दित हुई है। राजुल बेचैन होकर गिरिनार की ओर अकेली दौड़ पड़ी। यहाँ

लोक-मर्यादा बन्धन उसे न बाँध सका। राजुल की दृष्टि में वह नेमिनाथ की पत्नी थी। भारतीय कन्या एक बार पति चुनती है, बार-बार नहीं। इसी कारण सखियों के मना करने पर भी किसी की परवाह किये बिना वर्षा की भयंकरता की उपेक्षा करती हुई उस ओर दौड़ गई, जिस ओर उसका गन्तव्य था।

एतद्विषयक दो मधुमय पद द्रष्टव्य और ध्यातव्य है :

कहि राजमती सुमती सखियान कूँ,
एक खिनेक खरी रहुरे।
सखिरी सगिरी अंगुरी, मुहि बाहि,
करती बहुत इसी निहुरे॥
अबही तबही कबही जबही,
जदुराय कूँ जाय इसी कहुरे।
मुनि हेम के साहिब नेमजी हो,
अब तोरन तें तुम्ह क्यूँ बहुरे॥
घनघोर घटा उनई जु नई,
इततैं उततैं चमकी बिजली।
'पिउरे पिउरे' पपिहा बिललाति जू,
मोर किंगार करंति मिली॥
बिच बिन्दु परे दृग आँसु झरैं,
दुनि धार अपार इसी निकली।
मुनि हेम से साहब देखन कूँ,
उग्रसेनन लली सु अकेली चली॥

मिलन की आतुरता के इस चित्र की तुलना गोस्वामी तुलसीदास की 'उमगि नदी अंबुधि पहं आई' से बहुत अच्छी जमेगी। सचमुच, राजुल-रूप नदी का नेमिनाथ-रूप समुद्र की ओर आवेग के साथ प्रधावित होना बड़ा ही तीव्र और वेधक है।

संवत् १५२१ के जैन भक्त कवि लघुराज ( उपनाम 'लावण्यसमय' ) की कवित्व-शक्ति की ख्याति चतुर्दिग्व्यापिनी थी। इनके पूर्वज अहमदाबाद के निकटस्थ पाटणनगर के आदि निवासी थे। इन्होंने अनेक भक्तिपरक कृतियों की सर्जना की। कवि ने अपनी, विक्रमाब्द १५६८ की एक प्रसिद्ध कृति 'विमल प्रबन्ध' में लिखा है कि सोलहवें वर्ष में मुझ पर सरस्वती की कृपा हुई और

मुझ में कवित्व-शक्ति का जन्म हुआ। फलतः, मैं छन्द, कवित्त, चौपाई, रास और अनेक प्रकार के गीत एवं राग-रागिनियों की रचना करने में समर्थ हो सका। लघुराज ने सरस्वती का रसमय गीत 'रंग-रत्नाकर नेमिनाथ-प्रवन्ध' में कई पदों में गाया है। निम्नांकित पद में सरस्वती की आंगिक सौन्दर्य-माधुरी का मोहक चित्रण द्रष्टव्य है :

तुझ तनु सोहई उज्ज्वल कंति,
पूनिम ससिहर परिझल कंति।
पय घमघम घुग्घर घमकंति,
हंसगमणि चालइ चमकंति ॥
चालइ चमकंती, जगि जयवंती,
वीणा पुस्तक पवर धरई।
करि कमल कमंडल काने कुंडल,
रवि मंडल परिकंति करइ ॥

लघुराज ने सरस्वती को 'सारसवचना' और 'दयामयी देवी' माना है और इनका विश्वास है कि सरस्वती के विमल चरणों की वन्दना मनुष्य की दुर्मति दूर कर उसे सुमति प्रदान करती है।

सोलहवीं शती के समर्थ राजस्थानी कवि छीहल (वि० सं० १५७५) अपनी रसमयी भक्ति के लिए परम प्रख्यात थे। इन्होंने अनेक कृतियों की रचना की थी। शोध में प्राप्त इनकी विप्रलम्भ श्रृंगार-विषयक एक गीतकृति 'पंच-सहेली गीत' की मधुरता मन को रमानेवाली है। इसमें ६८ पद हैं। मालिन, तमोलिन, छीपिन, कलालिन और सुनारिन—ये पाँच सहेलियाँ हैं। पाँचों ने अपने-अपने प्रिय के विरह का वर्णन किया है। वस्तुतः, वह विरह परमात्मा का ही है। प्रिय-मिलन होते ही सबको परमानन्द की प्राप्ति होती है।

मालिन का पति, उसे भरे यौवन में छोड़कर कहीं चला गया है। उसका दुःख अनन्त है। कमल जैसा मुँह मुरझा गया है और शिशिर की वनराजि जैसा शरीर सूख गया है। प्रियतम के बिना उसे एक-एक पल एक-एक बरस के बराबर लगता है। जिस शरीर-रूपी वृक्ष पर यौवन-रस से भरे स्तन-रूपी दो नारंगी लगे थे, वह विरह की अग्नि में सूखने लगा है और सींचनेवाला दूर है। उसने चम्पा की पंखुड़ियों से एक नया हार गूँथा था। यदि वह इसे पति के बिना पहने तो वह अंगों को अंगारा जैसा लगे। मूल पद इस प्रकार है :

कमल बदन कुमलाइया सूकी रूख बनराइ।
बिन पीया रइ एक षिन बरस बराबरि जाइ ॥
तन तरवर फल लग्गीया दुइ नारिंग रस पूरि।
सूकन लगा विरह झल सींचन हारा दूरि ॥
चम्पा केरी पंखडी गूंथ्या नवसर हार।
जइ इहु पहिरउ पीव बिन लागई अंग अंगार ॥

इसी प्रकार पति के बिना विरह ने तमोलिन की चोली के भीतर घुसकर उसके शरीर को आहत किया है। बसन्त की रात को काटना दूभर हो गया है। ग्रीष्म के सन्तप्त दिन भी कैसे कटे, छाया देने वाला पति परदेश चला गया है।

छीपिन के हृदय की पीड़ा दूसरा जान ही नहीं सकता। इसके तन-रूप कपड़े को विरह-रूप दरजी दुःख-रूप कैंची से दिन-रात काटता चला जा रहा है। कलालिन की देह पर उन्मद यौवन की फागवाली मधुऋतु बिखरी हुई है। किन्तु, उसका पति दूर है, अतः वह किसके साथ होली खेले। उसे तो केवल अपने अधूरे अरमानों के साथ बिसूर-बिसूरकर मरना है। सुनारिन विरह-रूप समुद्र में इस प्रकार डूब गई है कि उसकी थाह ही नहीं मिलती। उसके प्राणों को मदन-रूप सुनार ने हृदय-रूप अँगीठी पर विरह-रूप आग में जला-जलाकर कोयला कर दिया है। यहाँ रूपकाश्रित मनोरम चाक्षुष बिम्ब दर्शनीय है।

कतिपय दिनों के बाद फिर वे पाँचों सहेलियाँ मिलीं। उनके चेहरे खिले-खुले थे। उनके प्रियतम आ गये थे और उनके दिन सुख से बीत रहे थे। तमोलिन का मिलन-सुख द्रष्टव्य है :

चोली खोल तमोलनी काढ्या गात अपार।
रंग कीया बहु प्रीयसूँ नयन मिलाई तार ॥

तमोलिन का यह मिलन कबीर के विख्यात रहस्यवाद की तुरीयावस्था है। कवि छीहल ने इसका वर्णन जिस रूपक के सहारे किया है, वह आनन्द-कादम्बिनी की धारा में पाठकों को मग्न करने वाला है। मधुर भावना की चरम परिणति इसी 'लस आलिंगन' या 'एकांगीभवन' में है।

सत्रहवीं शती के जहाँगीर-शासनकालीन कवि भगवतीदास ने संवत् १६८४ में 'बृहत्सीतासतु' का निर्माण किया था। उसी का उन्होंने संक्षिप्त रूपान्तर 'लघुसीतासतु' के नाम से प्रस्तुत किया। इसमें रावण की पत्नी

मन्दोदरी और रामप्रिया सीता का संवाद बड़ी ही रसाक्त शैली में दिया गया है। इसमें कवि की माधुर्य भावना का संकेत मिलता है। मन्दोदरी सीता को रावण के साथ रमण के लिए उत्सुक करती है और सीता अपने हिमशैल-से अचल सतीत्व पर दृढ़ रहती है। यह संवाद 'बारहमासा' के रूप में लिखा गया है। आषाढ़ के संवाद की कतिपय पंक्तियाँ :

मन्दोदरी—

तब बोलइ मन्दोदरी रानी,
रुति अषाढ़ घनघट घहरानी।
पीय गए ते फिर घर आवा,
पामर नर नित मंदिर छावा॥

लवहिं पपीहे दादुर मोरा,
हियरा उमग धरत नहिं भोरा।
बादर उमहि रहे चौपासा,
तिय पिय बिनु लिहिं उसन उसासा॥

नन्हीं बूँद झरत झर लावा,
पावस नभ आगमु दरसावा।
दामिनि दमकत निरा अंधियारी,
बिरहिनि काम बान उरि मारी॥

भुगवहिं भोग सुनहिं सिख मोरी,
जानत काहे भई मति भोरी।
मदन रसाइन हुई जग सारू,
संजम नेमु कथन षिवहारू॥

जब लगु हंस सरीर महिं,
तब लगु कीजइ भोगु।
राज तजहिं भिक्षा ममहिं,
हउं भूला सब लोगु॥

सीता—

सुकनासिक मृगदग पिकबइनी,
जानुकि वचन लवइ सुखि रइनी।

अपना पिय पइ अमृत जानी,
अवर पुरुष रवि दुख समानी ॥

पिय चितवनि चितु रहइ अनंदा,
पिय गुन सरत बढ़त जस कंदा।
प्रीतम प्रेम रहत मनपूरी,
तिनि बालिमु संगु नाहिं दूरी ॥

सुख चाहइ ते बावरी, परपति संग रति मानि।
जिउ कपि सीत बिथा मरइ, तापत गुंजा आनि ॥
तृस्ना तौ न बुझाइ, जलु जब खारी पीजिये।
मिरगु मरइ जपि धाइ, जल धोखइ थलि रेतकई ॥

यह वर्णन मधुर होते हुए भी मनोवृत्ति को सम्यक् चारित्र की ओर ले जाने वाला है।

जैनाचार संयमन या अवदमन द्वारा इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करने का आदेश देता है। यही कारण है कि परम्परया अधिकांश हिन्दी के जैन कवि माधुर्य-भावना का प्रत्यक्ष वर्णन करने से हिचकते थे। इसलिए जैन काव्य में भक्ति के मधुर पक्ष का प्रायशः अभाव है। ऐसे कवि अंगुलिगण्य हैं, जिन्होंने खुलकर मधुर भावना का समीचीन चित्रण किया हो। जो हैं भी, उन्होंने प्रत्यक्ष वर्णन न कर बिभिन्न रूपकों का आश्रय लिया है।

पन्द्रहवीं शती के जिनोदय सूरि के शिष्य मेरुनन्दन उपाध्याय ने 'जिनोदय सूरि विवाहलउ' नामक काव्य में कुछ इसी प्रकार रूपकाश्रित वर्णन किये हैं। हालाँकि इस काव्य को सही माने में ललित और सरस काव्य कहा जायगा। इसमें वर्णन-वैचित्र्य और पद-लालित्य पदे-पदे परिलक्षित होता है।

जैसे :

अत्थि गूजर धरा सुंदरी सुंदरे,
उखरे रयण हारोवमाणं।
लच्छि केलिहरं नयरु पलहणपुरं,
सुरपुरं जेम सिद्धभिहाणं ॥

अर्थात्, गुर्जरधरा-रूपी सुन्दरी के हृदय पर रत्नों के हार की भाँति पल्हणपुर विराजमान है, जो लक्ष्मी की क्रीड़ाभूमि है और सिद्धों से प्रतिष्ठित स्वर्गपुरी जैसी शोभित है।

इस काव्य के कथानायक सेठ रूद्रपाल के पुत्र समरकुमार को गुरुवर श्रीजिनकुशल सूरि दीक्षा देना चाहते हैं। इसी को ललित काव्य की रसमयी रूपकाश्रित भाषा में इस प्रकार कहा गया है :

अह सयल लक्खणं जाणि सुवियक्खणं,
सूरि दट्ठूण समरं कुमारं।
भविय बुह नंदणो नयण आनंदणो,
परिणओ अम्ह दिक्खा कुमारिं॥

अर्थात्, सूरिजी ने समर को देखकर कहा कि यह तुम्हारा समरकुमार सम्पूर्ण श्रेष्ठ गुणों से युक्त है और सुविचक्षण भी है। नेत्रों को आनन्द देनेवाले अपने इस पुत्र का विवाह मेरी पुत्री दीक्षाकुमारी के साथ कर लो।

सही बात तो यह है कि हिन्दी के सभी जैन कवि प्रायः भक्त ही होते थे। गृहस्थ नहीं के बराबर। इसलिए, उन्होंने दाम्पत्य-रति के सम्बन्ध को भौतिक धरातल पर नहीं उतारा। सब कुछ आध्यात्मिक स्तर की ही बात रही। उसकी अभिव्यक्ति के माध्यम को भी विलासिता के स्पर्श से सतर्कतापूर्वक अलग रखा गया। उपमा और उत्प्रेक्षाएँ भी अधिकांश अमांसल ही रहीं। इन कवियों ने विलासिता या मधुर भावना को ही भक्ति के क्षेत्र में अशान्ति का कारण माना, फिर भी ये मधुर भावना से अछूते रहे, ऐसा भी नहीं ही कहा जा सकता।

# बुन्देलखण्ड में नियमसार की पाण्डुलिपियों की खोज

डॉ० ऋषभचन्द्र जैन 'फौजदार'*

सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय का प्राकृत एवं जैनागम विभाग प्राकृत एवं जैनविद्या के वरिष्ठ विद्वान प्रोफेसर गोकुलचन्द्र जैन के निर्देशन में आचार्य कुन्दकुन्द विषयक उच्चतर अध्ययन-अनुसन्धान के क्षेत्र में विभिन्न योजनाओं पर कार्य कर रहा है। कुन्दकुन्द के ग्रन्थों के प्रामाणिक संस्करण तैयार कराना भी उन्हीं योजनाओं का एक अंग है। उसी क्रम में मैं नियमसार का सम्पादन कर रहा हूँ।

प्राचीन प्राकृत ग्रन्थों के सम्पादन में विशेष सावधानी की आवश्यकता है। विगत वर्षों में कतिपय सम्पादकों ने सम्पादन के मान्य सिद्धान्तो को ताक पर रखकर मनमाने ढंग से आर्ष ग्रन्थों का सम्पादन किया है। प्राचीन प्राकृत पाठ में छन्द और व्याकरण के अनुसार अनेक परिवर्तन कर डाले हैं और इस तरह मूल ग्रन्थ का स्वरुप ही विकृत हो गया है। प्राचीन ग्रन्थों के सम्पादन में पाठालोचन के सिद्धान्तों का पालन आवश्यक है। इस सन्दर्भ में प्रो० गोकुलचन्द्र जैन का जैनगजट ११ अप्रैल ९१ के अंक में प्रकाशित "श्रुतदेवता की मूर्तियाँ खण्डित होने से बचायें" शीर्षक लेख विशेष रूप से द्रष्टव्य है।

आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थ विषय एवं भाषा की दृष्टि से विशेष महत्वपूर्ण हैं। उनके प्रामाणिक संस्करण नितान्त आवश्यक हैं। आज जो संस्करण उपलब्ध हैं, प्रायः प्रत्येक में मूल प्राकृत पाठ अलग-अलग है। इसका प्रमुख कारण व्याकरण, छन्द या संस्कृत के निकट लाने के लिए किये गये प्रयत्न हैं। इससे ग्रन्थों की परम्परा और प्राचीनता खंडित हुई है। प्राचीन पाण्डुलिपियों का उपयोग भी उक्त संस्करणों में प्रायः नहीं हुआ है। देश-विदेश के शास्त्र भंडारों में कुन्दकुन्द के ग्रन्थों की शताधिक पाण्डुलिपियाँ सुरक्षित हैं। आज तक उन सबका सर्वेक्षण नहीं किया गया। यह आश्चर्य की बात है कि स्वयं कुन्दकुन्द के नाम पर बनी संस्थाएँ भी इस दिशा में कोई कार्य नहीं कर रही हैं।

नियमसार का पहला प्रकाशन सन् १९१६ में हुआ, इसमें जयपुर के गोधों के दि० जैन मन्दिर की एक हस्तलिखित पाण्डुलिपि का उपयोग हुआ। इसका सम्पादन ब्र० शीतलप्रसाद ने किया। बाद में इसके अनेक प्रकाशन

---

* अवास : २९ विजयानगरम् कालौनी, भेलूपुर, वाराणसी-२२१०१०

हुए। किसी भी प्रकाशन में प्राचीन हस्तलिखित पाण्डुलिपियों का उपयोग नहीं हुआ। यही कारण है कि नियमसार की प्राकृत गाथाएँ अत्यधिक अशुद्ध छपी हैं। उत्तर और दक्षिण भारत के शास्त्र भंडारों में नियमसार की पर्याप्त प्राचीन पाण्डुलिपियाँ उपलब्ध हैं। उनका उपयोग करते हुए ग्रन्थ का प्रामाणिक संस्करण अत्यन्त आवश्यक है।

अप्रैल ९१ में मैंने नियमसार की पाण्डुलिपियाँ खोजने एवं प्राप्त करने के निमित्त राजस्थान एवं दिल्ली की यात्रा की। इस शोधयात्रा में बीस शास्त्र भंडारों का सर्वेक्षण किया। प्रायः सभी भंडार व्यवस्थित मिले। कुछ की ग्रन्थ सूचियाँ भी प्रकाशित हैं। उनमें नियमसार की १४ पाण्डुलिपियाँ प्राप्त हुई हैं। उनमें से उपयोगी १० की फोटोस्टेट प्रतिलिपियाँ क्रय कर ली गई हैं। शेष चार के विवरण नोट कर लिये हैं।

अभी तक उत्तर तथा दक्षिण भारत के कतिपय शास्त्र भंडारों की ही सूचियाँ सामने आयी हैं, इसलिए यह कहना सम्भव नहीं है कि आचार्य कुन्दकुन्द के किस ग्रन्थ की कितनी पाण्डुलिपियाँ कहाँ उपलब्ध हैं। प्राचीन मध्यदेश, मध्यभारत, बुन्देलखण्ड जिसके अन्तर्गत अब मध्यप्रदेश उत्तर-प्रदेश और महाराष्ट्र के कुछ हिस्से आते हैं, इस सम्पूर्ण क्षेत्र का सर्वेक्षण आज तक नहीं किया गया। इस दिशा में लगभग ५५ वर्ष पूर्व रायबहादुर हीरालाल ने एक प्रयत्न किया तथा १९२६ में नागपुर से एक सूची "कैटलॉग ऑफ संस्कृत एण्ड प्राकृत मैन्युस्क्रिप्ट्स् इन सेन्ट्रल प्रोविन्सेज् एण्ड बरार" नाम से प्रकाशित की। उसके बाद ५५ वर्ष के इस दीर्घ अन्तराल में कोई प्रयत्न नहीं हुआ। यह स्थिति चिन्ता का विषय है। इस ओर ध्यान देना आवश्यक है।

हमारा मानना है कि कुन्दकुन्द जैसे विश्रुत तथा बहुजनसम्मत आचार्य के ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ सम्पूर्ण भारत के शास्त्रभंडारों में होनी चाहिए। प्रोफेसर गोकुलचन्द जैन इस बात को विशेष जोर देकर कहते हैं कि मध्यदेश जैन सांस्कृतिक इतिहास की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उत्तर से दक्षिण और दक्षिण से उत्तर में जैन संस्कृति के सम्प्रेषण का प्रमुख मार्ग मध्यदेश ही रहा है। इसलिए इस क्षेत्र का विशेष महत्व है।

उक्त तथ्यों को ध्यान में रखते हुए नियमसार की पाण्डुलिपियों की खोज के लिए मध्यप्रदेश के सर्वेक्षण की योजना है। इसी क्रम में जून माह में मैंने मध्यभारत के बुन्देलखण्ड क्षेत्र की यात्रा की और प्रायः बीस स्थानों के छोटे-बड़े शास्त्रभंडारों का सर्वेक्षण किया। उनमें रैपुरा, कटनी, खजुराहो, सागर, बीना, खुरई, पिडरुआ, रहली, शाहगढ़, द्रोणगिरि, घुवारा अहार, पपौरा,

हटा आदि प्रमुख हैं। उक्त स्थानों के भंडार प्रायः अव्यवस्थित हैं। व्यवस्थापकों से व्यवस्था एवं रख-रखाव सम्बन्धी विषयों पर महत्वपूर्ण चर्चाएँ हुईं। निष्कर्ष प्रायः संतोषजनक रहे।

उक्त *स्थानों के शास्त्रभंडारों में गौराबाई दि० जैन मन्दिर, कटरा* बाजार, सागर की ग्रन्थ सूची में नियमसार की एक पाण्डुलिपि का उल्लेख मिला किन्तु वहाँ पाण्डुलिपि उपलब्ध नहीं है। सूची में नाम के सामने × निशान लगा है। अन्य शास्त्रभंडारों में कुन्दकुन्द के अन्य ग्रन्थों की पाण्डुलिपियाँ तो उपलब्ध होती हैं, किन्तु नियमसार की नहीं हैं।

शोध सर्वेक्षण में श्री पूरनचन्द जैन कटनी, बालचन्द जैन कटनी, डॉ० शिखरचंद जैन, कमलकुमार जैन छतरपुर, पं० दयाचन्द साहित्याचार्य सागर, पं० ज्ञानचन्द व्याकरणाचार्य सागर, अशोककुमार जैन सागर, कन्छेदीलाल जैन बीना, पं० नेमिचन्द्र जैन खुरई, सेठ गोकुलप्रसाद जैन शाहगढ़, पं० धन्यकुमार जैन द्रोणगिरि, वीरेन्द्रकुमार जैन आहार एवं चन्द्रभान जैन घुवारा आदि का पूरा सहयोग रहा है, इसलिए इनका हृदय से आभारी हूँ। यात्रा में कई स्थानीय विद्वानों से विचार-विमर्श करने का भी अवसर मिला।

सर्वेक्षण क्रम में १५ व १६ जून को श्रुतपंचमी पर्व पर खजुराहो में आयोजित विद्वद् गोष्ठी में सम्मिलित होने का अवसर मिला। इसी समय खजुराहो में प्राचीन पाण्डुलिपियों के संग्रह एवं सुरक्षा की दृष्टि से 'आचार्य कुन्दकुन्द श्रुतभंडार' की स्थापना की गई है। इसका प्रमुख उद्देश्य आचार्य कुन्दकुन्द के ग्रन्थों की देश-विदेश में उपलब्ध प्राचीन पाण्डुलिपियाँ प्राप्त करके शोधार्थियों को सुलभ कराना है। अन्य ग्रन्थों की प्राचीन पाण्डुलिपियाँ भी संग्रह की जा रही हैं। अभी तक वहाँ लगभग छह सौ पाण्डुलिपियाँ एकत्रित हो गई हैं। श्रुत परम्परा को सुरक्षित रखने का यह कार्य निःसन्देह सराहनीय है। इसके लिए दशरथ जैन, एडवोकेट एवं पं० कमलकुमार जैन विशेष रूप से धन्यवादार्ह हैं।

मध्यप्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, कर्नाटक आदि के शास्त्रभंडारों के सर्वेक्षण का पूरा कार्यक्रम बनाया जा रहा है। मेरा विद्वानों, श्रीमानों एवं कुन्दकुन्द प्रेमी जनों से विनम्र अनुरोध है कि उनकी जानकारी में कहीं भी नियमसार की पाण्डुलिपि हो तो मुझे सूचित करें तथा उसकी फोटोस्टेट प्रतिलिपि प्राप्त कराने में सहयोग करें।

# त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

## श्री हेमचन्द्राचार्य

[ पूर्वानुवृत्ति ]

### सप्तम पर्व

### प्रथम सर्ग

अंजन के समान कान्तियुक्त हरिवंश के चन्द्र तुल्य मुनि सुव्रत स्वामी के तीर्थ में बलदेव पद्म (राम), वासुदेव नारायण (लक्ष्मण) और प्रतिवासुदेव रावण उत्पन्न हुए। अब मैं उनका चरित्र विवृत करूँगा।

जिस समय अजितनाथ स्वामी पृथ्वी पर विचरण कर रहे थे उसी समय भरत क्षेत्र के राक्षस द्वीप की लंकापुरी में राक्षस वंश के अंकुरभूत घनवाहन नामक एक राजा राज्य करते थे। उन विवेकवान राजा ने अपने पुत्र महाराक्षस को राज्य देकर तपश्चर्या द्वारा मोक्ष प्राप्त किया। महाराक्षस अपने पुत्र देवराक्षस को राज्य देकर दीक्षा अंगीकार कर मोक्ष गए। इस प्रकार उत्तरोत्तर राक्षस द्वीप में अनेक राजा हुए। तीर्थंकर श्रेयांस के तीर्थ में कीर्तिधवल नामक एक राजा इसी राक्षस द्वीप में राज्य कर रहे थे।

उस समय वैताढ्य पर्वत पर मेघपुर नगर में विद्याधरों के प्रसिद्ध राजा अतीन्द्र हुए थे। उनकी पत्नी का नाम श्रीमती था। श्रीमती के गर्भ से उनके दो सन्तान उत्पन्न हुयी। एक श्रीकण्ठ नामक पुत्र था। दूसरा देवी-सी रूपवती देवी नामक कन्या थी। रत्नपुर का राजा पुष्पोत्तर नामक विद्याधरपति ने अपने पुत्र पद्मोत्तर के लिए सुन्दर नेत्रवाली देवी के लिए प्रार्थना की। किन्तु दैवयोग से अतीन्द्र ने गुणवान और श्रीमान होने पर भी पद्मोत्तर को कन्या देना अस्वीकार कर देवी को राक्षस द्वीप के राजा कीर्तिधवल को दे दी। देवी का विवाह कीर्तिधवल से हो गया है सुनते ही पुष्पोत्तर क्रोधित हो गए और तभी से अतीन्द्र और श्रीकण्ठ के प्रति शत्रुभावापन्न हो गए।

एक बार मेरु पर्वत से लौटते हुए श्रीकण्ठ ने पुष्पोत्तर की पद्म-सी कन्या रूपवती पद्मा को देखा। उसी मुहूर्त में कामदेव के विकार सागर को तरंगित करने के लिए (वायुरूपी) दुर्दिन के समान एक दूसरे पर अनुरक्त हो गए। कुमारी पद्मा स्व स्निग्ध दृष्टिपूर्ण मुख कमल को श्रीकण्ठ के सम्मुख कर खड़ी हो गयी मानो वह स्वयंवरा होने के लिए श्रीकण्ठ के गले में वरमाला डालने को उत्सुक हो। श्रीकण्ठ ने उसका मनोभाव भाँप लिया। वह स्वयं भी उसको

चाह रहा था। अतः उसे रथ पर बैठाकर आकाश पथ से स्वनगरी की ओर प्रस्थान किया। पद्मा को कोई हरणकर लिए जा रहा है देखकर उसकी सहेलियाँ चिल्ला उठीं। उनका चिल्लाना सुनकर बलवान पुष्पोत्तर स्वसैन्य सहित उनके पीछे दौड़ा। पुष्पोत्तर को अपने पीछे आते देखकर श्रीकण्ठ ने कीर्तिधवल की शरण ली और उन्हें पद्मा को हरण कर लाने का सारा वृत्तान्त समझा दिया। प्रलयकालीन समुद्र का जल जिस भाँति सभी दिशाओं को आवृत्त कर देता है उसी प्रकार अपने सैन्यरूपी जल से समस्त दिशाओं को आवृत कर पुष्पोत्तर वहाँ आकर उपस्थित हो गया। कीर्तिधवल ने दूत के द्वारा पुष्पोत्तर को कहलाया—बिना विचारे जो आप युद्ध के लिए प्रस्तुत हुए हैं वह ठीक नहीं है। कन्या तो आपको किसी न किसी को ब्याहनी ही पड़ेगी। जब कन्या ने स्वयं ही श्रीकण्ठ को निर्वाचित किया है तब इसमें दोष क्या है? अतः आप युद्ध की इच्छा परित्याग कर कन्या की इच्छा ज्ञात करें और श्रीकण्ठ के साथ उसके विवाह का आयोजन करें। उसी समय पद्मा ने भी दूती के द्वारा कहलाया, पिताजी, मैं स्वेच्छा से इनके साथ आयी हूँ। उन्होंने मुझे अपहरण नहीं किया है। यथातथ्य ज्ञात हो जाने पर पुष्पोत्तर का क्रोध शान्त हो गया। जो विचारवान होते हैं उनका क्रोध सरलता से ही शान्त हो जाता है। पुष्पोत्तर ने खूब धूमधाम से श्रीकण्ठ के साथ पद्मा का विवाह कर दिया और अपने नगर को लौट गए।

तब कीर्तिधवल श्रीकण्ठ से बोले, 'मित्र, तुम यहीं रहो कारण वैताढ्य पर्वत पर तुम्हारे अनेक शत्रु हैं। राक्षस द्वीप के समीप वायव्य कोण में तीन सौ योजन प्रमाण वानर द्वीप है। इसके अतिरिक्त भी वव्वर कुल, सिंहल आदि मेरे अनेक द्वीप हैं। वे इतने सुन्दर हैं, लगता है मानो स्वर्ग के टुकड़े टूट कर यहाँ पड़े हैं। उसी में से किसी भी द्वीप में राजधानी स्थापित कर मेरे पास ही सुखपूर्वक रहो। यहाँ तुम्हें शत्रुओं से कोई भय नहीं है। छोड़ो शत्रुओं को, मेरा वियोग न हो इसलिए भी तुम यहीं रहो।' कीर्तिधवल के इस प्रकार आग्रह करने पर एवं मित्र का वियोग न हो यह सोचकर श्रीकण्ठ ने वानर द्वीप में रहना स्वीकार कर लिया। तब कीर्तिधवल ने वानर द्वीप में किष्किन्ध्या पर्वत पर स्थित किष्किन्ध्या नगरी को राजधानी रूप में स्थापित कर वहाँ श्रीकण्ठ का राज्याभिषेक कर दिया। श्रीकण्ठ ने एक दिन उस द्वीप पर फलभक्षी बलिष्ठ देहवाले अनेक सुन्दर वानरों को देखा। उसने केवल उनकी हत्या न की जाय यही आदेश नहीं दिया बल्कि नियत स्थान पर नियत समय पर फल जलादिक की भी व्यवस्था कर दी। राजा को उनका सत्कार

करते देखकर प्रजा भी उनका सत्कार करने लगी। कारण यथा राजा तथा प्रजा। तदुपरान्त वहाँ के विद्याधर कौतुकवश चित्रों में, लेप्य में, ध्वजा में, छत्रादि में वानर चिन्ह अंकित करने लगे। वानर द्वीप में निवास करने के कारण और सर्वत्र वानर चिन्ह अंकित करने के कारण वहाँ के विद्याधर वानर नाम से प्रसिद्ध हुए।

श्रीकण्ठ के एक पुत्र हुआ। उसका नाम बज्रकण्ठ रखा गया। वह युद्ध-क्रीड़ा में आनन्द पाता। अतः उस क्रीड़ा में वह प्रवीण हो गया।

एक दिन श्रीकण्ठ जबकि सभा मण्डप में बैठे थे तब उन्होंने देवों को शाश्वत अर्हतों के पूजन के लिए नन्दीश्वर द्वीप जाते देखा। राजपथ पर अश्व को जाते देख ग्राम्य पथ के अश्व भी जिस प्रकार उसके पीछे हो जाते हैं उसी प्रकार श्रीकण्ठ ने भी देवों का अनुसरण किया। राह में पर्वत आ जाने से जिस प्रकार वेगवती नदियों की गति अवरुद्ध हो जाती है उसी प्रकार मानुष्योत्तर पर्वत पर उनकी गति रुद्ध हो गयी। श्रीकण्ठ ने सोचा—मैंने पूर्व जन्म में अधिक तप नहीं किया इसीलिए नन्दीश्वर द्वीप के शाश्वत तीर्थंकरों के दर्शन की मेरी इच्छा पूर्ण नहीं हुई। इस प्रकार विचार करते हुये संसार से विरक्त होकर उन्होंने वहीं दीक्षा ग्रहण कर ली और कठोर तपश्चरण कर मोक्ष को प्राप्त किया।

श्रीकण्ठ के पश्चात् बज्रकण्ठ आदि कितने राजा आए और गए। अन्त में मुनि सुव्रत स्वामी के तीर्थ में वानर द्वीप में घनोदधि नामक एक राजा हुए। उस समय राक्षस द्वीप पर तड़ित्केश नामक राजा राज्य करते थे। इन दोनों में परस्पर प्रगाढ़ प्रेम था।

एक दिन राक्षस द्वीपाधिपति तड़ित्केश अन्तःपुरिकाओं सहित सुरम्य नन्दन वन में क्रीड़ा करने गए। तड़ित्केश जब क्रीड़ा में निमग्न थे एक वानर वृक्ष से नीचे उतरा और उनकी मुख्य रानी श्रीचन्द्रा के स्तनों को नाखुनों से खरोंच डाला। यह देखकर तड़ित्केश अत्यन्त क्रुद्ध हो गया और सिर के केशों को पीछे की ओर करते हुए उसपर तीर छोड़ा। पत्नी का अपमान कोई सहन नहीं कर सकता। बाण विद्ध होने पर वह वानर वहाँ से भागकर समीप के उद्यान में जहाँ एक मुनि कायोत्सर्ग ध्यान में खड़े थे उनके पैरों पर गिर पड़ा। मुनि ने भी उसे परलोक यात्रा के पाथेय रूप नमस्कार महामन्त्र सुनाया। नवकार मंत्र के प्रभाव से वह वानर भवनवासी देवलोक में उदधि कुमार देव के रूप में उत्पन्न हुआ। उत्पन्न होते ही अवधि ज्ञान से अपना पूर्व

भव जान कर वह मुनि के निकट आया और उनकी चरण वन्दना की। मुनि सज्जनों के लिए सदैव वन्दनीय हैं, उनमें भी जो उपकारी होते हैं वे विशेष रूप से वन्दनीय हैं।

उधर तड़ित्केश की आज्ञा से उसके अनुचर बन्दरों की हत्या करने लगे। यह देखकर वह उदधि कुमार देव बहुत क्रुद्ध हो गए। उन्होंने अपनी वैक्रिय लब्धि से बड़े-बड़े वानरों की सृष्टि की जो कि बड़े-बड़े वृक्ष और शिलाओं को उखाड़ कर राक्षसों पर फेंक कर उनकी हत्या करने लगे। इसे देवकृत उपद्रव समझकर तड़ित्केश वहाँ आया और उदधि कुमार देव की पूजा कर पूछा, 'आप कौन हैं? और क्यों उपद्रव कर रहे हैं?' पूजा से सन्तुष्ट होकर उदधिकुमार ने पूर्व जन्म में अपने निहत होने और नमस्कार मन्त्र के प्रभाव से देव होने की बात बतलायी।

यह सुनकर तड़ित्केश देव के साथ मुनि के पास गए और उन्हें वन्दना कर पूछा, 'हे भगवन्, इस वानर के साथ मेरा वैर क्यों हुआ?' प्रत्युत्तर में मुनि बोले, 'तुम श्रावस्ती नगर में मन्त्रीपुत्र थे, तुम्हारा नाम दत्त था और यह वानर काशी का एक व्याध था। एक बार तुम दीक्षा लेकर काशी जा रहे थे और यह व्याध शिकार के लिए काशी से बाहर जा रहा था। तुम्हें सम्मुख आते देखा तो इसे अपशकुन समझकर तीर मारकर तुम्हें धराशायी कर दिया। वहाँ से मृत्यु होने पर तुम महेन्द्र कल्प में देव रूप में उत्पन्न हुए। वहाँ का आयुष्य पूर्ण होने पर तुमने लंकाधिपति के रूप में जन्म ग्रहण किया और वह मृत्यु के पश्चात् नरक गया। वहाँ की आयु पूर्ण होने पर वानर के रूप में जन्मा। यही तुम्हारे वैर का कारण है।

उन असाधारण उपकारी मुनि को वन्दना कर और लंकाधिपति की आज्ञा लेकर वे देव स्वस्थान को लौट गए। तड़ित्केश ने भी अपना पूर्व भव ज्ञात हो जाने से अपने पुत्र सुकेश को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली और तपश्चर्या द्वारा मोक्ष प्राप्त किया। राजा घनोदधि भी स्वपुत्र किष्किंधी को किष्किन्ध्या का राज्य देकर दीक्षित हो गए और परमपद को प्राप्त किया।

उस समय वैताढ्य पर्वत पर रथनुपुर नामक नगर में विद्याधर राज अशनिवेग राज्य करते थे। उनके दोनों भुजदण्ड-से उनके दो पुत्र थे विजयसिंह और विद्युतवेग। उसी पर्वतपर आदित्यपुर में मन्दिरमाली नामक एक विद्याधर राजा राज्य कर रहे थे। उनकी कन्या का नाम श्रीमाला था। कन्या के स्वयंवर में मन्दिरमाली राजा ने सभी राजाओं को आमन्त्रित

किया। ज्योतिष्क देवों की तरह विद्याधरगण आकाश पथ से आए और स्वयंवर सभा के मण्डप में बैठ गए। श्रीमाला हाथ में वरमाला लेकर आयी और जैसे-जैसे प्रतिहारी राजाओं का वर्णन करता, सुनती हुई वह अग्रसर होती गयी। जैसे नाले का जल वृक्षों का स्पर्श करता हुआ बढ़ता जाता है उसी प्रकार दृष्टि द्वारा राजाओं का स्पर्श करती हुई वह आगे बढ़ती गई। क्रमशः अनेक विद्याधर राजाओं का अतिक्रमण कर श्रीमाला किष्किन्धी के पास आकर उसी प्रकार रुक गई जैसे गंगा समुद्र के पास जाकर रुक जाती है। भविष्य में अपनी भुजलताओं से जो उसका आलिंगन करेगा उसी का अंगीकार स्वरूप वरमाला उसके कंठ में पहना दी। यह देखकर सिंह-सा साहसी विजयसिंह भृकुटि चढ़ाकर क्रोध से भयंकर बना बोल उठा, 'तस्कर को जिस प्रकार राज्य से निकाल दिया जाता है उसी प्रकार दुष्कृत करने वाले इस वंश के विद्याधरों को हमारे पूर्वजों ने वैताढ्य पर्वत की राजधानी से निर्वासित कर दिया था। मन्दकर्मी हीन जाति के इनको यहाँ कौन बुला लाया है? ये लोग भविष्य में फिर कभी यहाँ न आ जाएँ इसलिए आज मैं इनकी पशु की तरह हत्या करूँगा। ऐसा कहकर महाबली विजयसिंह उठकर खड़ा हो गया और अस्त्र उठाकर किष्किन्धी की हत्या करने के लिए यमराज की भाँति उसकी ओर जाने लगा। अन्यान्य साहसिक विद्याधर जो कि साहसिक कार्य करने में पीछे नहीं रहते थे वे भी उठ खड़े हुए। सुकेश आदि विद्याधरों ने किष्किन्धी का पक्ष लिया, अन्य विद्याधरों ने विजयसिंह का। उभय पक्ष में प्रलयात्मक युद्ध प्रारम्भ हो गया। हाथी के दाँतों की रगड़ से निकलती चिनगारियाँ आकाश में चमकने लगीं, अश्वारोहियों के परस्पर बर्छाओं के आघात से बिजली गिरने जैसा कड़-कड़ शब्द होने लगा। महारथियों के धनुषों की टंकार से आकाश गूँज उठा। सैनिकों की खड्गों के आघात से उनके मस्तक कटकर गिरने लगे। रक्त और शवों से पृथ्वी आवृत्त हो गयी। कुछ क्षण इसी प्रकार युद्ध चलने के पश्चात् किष्किन्धी के छोटे भाई अन्धक ने वृक्ष से फल फेंकने की तरह एक तीर से विजयसिंह का मस्तक काट डाला। यह देखकर विजयसिंह की ओर के विद्याधर भय से विह्वल हो गए। सचमुच ही स्वामी के बिना शौर्य कहाँ? नायकहीन सैन्यदल मृत-तुल्य होता है।

युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात् किष्किन्धी साक्षात् शरीरधारिणी जयलक्ष्मी-सी श्रीमाला, मित्र और अपनी सेना सहित आकाश पथ से किष्किधा लौट आए। अशनिवेग ने जब अकस्मात् वज्रपात-सी अपने पुत्र के निधन की

बात सुनी तो अपनी सेना लेकर किष्किध्या आया और परिखा का जल जैसे नगर को घेरे रहता है उसी प्रकार अपने सैन्यजल से किष्किधा को घेर लिया। सिंह जैसे अपनी गुफा से निकलता है उसी प्रकार अन्धक को साथ लेकर सुकेश और किष्किंधी नगर से बाहर आए। अत्यन्त क्रोध भरा अशनिवेग शत्रु को तृणवत समझकर युद्ध में प्रवृत हो गया। सिंह के समान बलवान और वीर पुत्रघातक अन्धक को क्रोधान्ध अशनिवेग ने युद्ध में मार डाला। यह देखकर हवा से जैसे मेघ छिन्न-भिन्न हो जाते हैं वैसे ही बानर और राक्षस सेना छिन्न-भिन्न हो गयी। किष्किंधी और लंकापति अन्य उपाय न देख अपने-अपने परिवार को लेकर पाताल लंका में चले गए। ऐसी विकट परिस्थिति में भाग जाना ही एकमात्र उपाय होता है। महावत् को मारकर जैसे हाथी शान्त हो जाता है वैसे ही अपने पुत्र घातक की हत्या कर अशनिवेग शान्त हो गया। शत्रु विनाश से हर्षित नवीन राज्य स्थापन में आचार्य-से अशनिवेग ने लंका के सिंहासन पर निर्घात नामक एक खेचर को बैठाकर इन्द्र जैसे अमरावती को लौट जाता है वैसे ही वैताढ्य स्थित अपनी राजधानी रथनुपुर को लौट गया। कालान्तर में वैराग्य उत्पन्न होने से उसने अपने पुत्र सहस्रार को राज्य देकर दीक्षा ग्रहण कर ली।

उधर पाताल लंका में रहते हुए सुकेश की रानी इन्द्राणी के गर्भ से माली, सुमाली और माल्यवान ये तीन पुत्र उत्पन्न हुए। किष्किंधी के भी श्रीमाला के गर्भ से आदित्यरजा और रिक्षरजा नामक दो पराक्रमी पुत्र हुए।

एक समय किष्किंधी मेरु पर्वत स्थित शाश्वत जिनेश्वरों के दर्शन कर लौट रहा था। तब राह में मधु नामक एक पर्वत देखा। द्वितीय मेरु-से उस पर्वत के चारों ओर विस्तृत उद्यानों में उसने क्रीड़ा की। यह स्थान अच्छा लगने के कारण उत्साही किष्किंधी ने वहाँ किष्किंध्यापुर नामक एक नगर बसाया और सपरिवार उसी नगर में रहने लगा।

सुकेश के तीनों पुत्र को जब यह ज्ञात हुआ कि उनका राज्य शत्रुओं ने छीन लिया है तो वे तीनों तीन अग्नि की तरह प्रज्वलित हो उठे। वे तुरन्त लंका गए और निर्घात की हत्या कर स्वराज्य को पुनः प्राप्त कर लिया। माली लंका के राजा हुए और किष्किंधी के कहने पर किष्किंध्या पर आदित्यराज राज्य करने लगे।

वैताढ्य पर्वत के रथनुपुर में अशनिवेग का पुत्र सहस्रार की पत्नी चित्र-सुन्दरी के गर्भ में कोई देव अवतीर्ण हुआ। कारण उसी समय उन्होंने

मंगलकारी एक शुभ स्वप्न देखा। कुछ दिनों पश्चात् चित्रसुन्दरी को इन्द्र के साथ सम्भोग करने का दोहद उत्पन्न हुआ। किन्तु वह दोहद न तो पूर्ण करने योग्य था न बोलने योग्य। फलतः दोहद पूर्ण न होने के कारण उनका शरीर क्रमशः कृश होने लगा। सहस्रार ने जब अत्यन्त आग्रहपूर्वक उनके दुर्बल होने का कारण पूछा तब लज्जा से सिर नीचा किए उसने अपने पति को दोहद की बात बतायी। तब सहस्रार विद्या बल से इन्द्र का रूप धारण कर उनके सम्मुख उपस्थित हुए और उनका दोहद पूर्ण किया। चित्रसुन्दरी ने भी उन्हें इन्द्र जानकर ही उनके साथ सम्भोग किया। यथासमय उनके एक पूर्ण पराक्रमी पुत्र ने जन्म ग्रहण किया। माँ को इन्द्र के साथ सम्भोग करने की इच्छा होने के कारण उसका नाम रखा गया इन्द्र। इन्द्र जब बड़ा होकर विद्या और बाहुबल से बलवान हो गया तब सहस्रार उसे राज्य देकर धर्माराधना में समय व्यतीत करने लगा।

इन्द्र ने समस्त विद्याधर राजाओं को जीत लिया। इन्द्र का दोहद उत्पन्न होने के कारण वह स्वयं को इन्द्र ही समझने लगा। उसने इन्द्र की तरह ही चार दिक्पाल, सात सैन्यदल और सेनापति, तीन परिषद्, बज्र आयुध, ऐरावत हस्ती, रम्भादि वारांगनाएँ, बृहस्पति नामक मन्त्री, नैगमेषी नामक पैदल सेना के नायक पद की सृष्टि की। इस प्रकार इन्द्र की समस्त सम्पत्ति का नाम धारण कर वह स्वयं को इन्द्र होने का दावा कर समस्त विद्याधरों पर एकछत्र राज्य करने लगा। ज्योतिःपुर के राजा मयूरध्वज की पत्नी आदित्यकीर्ति से उत्पन्न सोम को उसने पूर्व दिशा का दिक्पाल बनाया। किष्किन्ध्यापुर के राजा कालाग्नि की स्त्री श्रीप्रभा के पुत्र यम को उसने दक्षिण दिशा का दिक्पाल बनाया। मेघपुर के राजा मेघरथ की पत्नी वरुणा के पुत्र वरुण को उन्होंने पश्चिम दिशा का दिक्पाल बनाया और कांचनपुर के राजा सुर की पत्नी कनकावती के पुत्र कुबेर को उत्तर दिशा का दिक्पाल बनाया। इस प्रकार इन्द्र के समस्त वैभव सहित इन्द्र राज्य करने लगा।

मदमत्त हाथी जैसे अन्य हाथी को सहन नहीं कर सकता उसी प्रकार माली को इन्द्र का स्वयं को इन्द्र समझकर गर्व करना सहन नहीं हुआ। अतः वह अपने पराक्रमी भाई, मन्त्री और मित्रों को साथ लेकर इन्द्र से युद्ध करने आया। पराक्रमी पुरुषों के हृदय में युद्ध के अतिरिक्त अन्य कोई विचार ही नहीं आता। अन्य राक्षस वीर भी वानर वीरों को लेकर सिंह, हाथी, घोड़ा,

महिष, वराह और वृषमादि वाहन पर बैठकर युद्ध में अग्रसर हुए। रवाना होने के समय गर्दभ, सियार, सारस आदि उनके दाहिनी ओर खड़े होकर चित्कार करने लगे जबकि वे वाममार्गी थे। इस अपशकुन को देखकर बुद्धिमान सुमालीने माली को युद्ध यात्रासे निवृत्त करना चाहा। किन्तु भुजबल के गर्व से गर्वित माली उसकी बात पर कान न देकर दलबल सहित वैताढ्य पर्वत पर जाकर इन्द्र को युद्ध के लिए आह्वान किया। इन्द्र हाथ में बज्र लेकर मेगमेषी आदि सेनापति, सोमादि दिक्पाल और विविध शस्त्रधारी सेना से परिवृत्त होकर ऐरावत पर आरूढ़ युद्ध क्षेत्र में उपस्थित हुआ। विद्युत रूप अस्त्र लेकर आकाश में जैसे मेघ संघर्ष करता है उसी प्रकार इन्द्र और राक्षसों की सेना में परस्पर संघर्ष प्रारम्भ हुआ। अर्थात् एक ने दूसरे पर आक्रमण किया। कहीं पर्वत शिखर की भाँति रथ टूटकर गिरने लगा, कहीं हवा द्वारा उड़ा कर ले जाए गए मेघ की तरह हस्तीयूथ छिन्न-भिन्न होने लगे। कहीं राहुमुण्ड की तरह सैनिकों के कटे मुण्ड गिरने लगे। कहीं अश्वों के एक पैर कट जाने के कारण वे इस प्रकार चलने लगे मानो रज्जुबद्ध किए हुए हैं। इस भाँति इन्द्र की सेना ने माली की सेना को व्यस्त कर डाला। सिंह द्वारा पकड़ा गया हाथी बलवान होने पर भी क्या कर सकता है?

तब राक्षसपति माली सुमाली आदि ने अन्य वीरों को लेकर यूथ सह यूथपति हस्ती की तरह इन्द्र की सेना पर आक्रमण किया। उसके पराक्रमी वीरगण मेघ जैसे शिलावृष्टि का उपद्रव करता है उसी प्रकार गदा-मुद्गर और तीक्ष्ण तीरों से इन्द्र की सेना को व्याकुल कर डाला। अपनी सेना को त्रस्त होते देखकर इन्द्र ऐरावत पर चढ़कर स्वलोकपाल और सेनापतियों को लेकर युद्ध क्षेत्र में अग्रसर होने लगा। इन्द्र माली के साथ एवं लोकपालादि सुमाली और अन्य वीरों के साथ युद्ध करने लगे। मृत्यु को हाथ में लिए इस प्रकार उभय पक्ष बहुत देर तक युद्ध करता रहा। जो जय के अभिलाषी होते हैं वे प्रायः मृत्यु को हाथ में लेकर ही युद्ध करते हैं। युद्ध में किसी भी प्रकार छलना का आश्रय लिए बिना युद्ध करते हुए इन्द्र मेघ जैसे विद्युत के द्वारा गोधिका को मार डालता है उसी प्रकार बज्र से गर्वित माली को मार डाला। माली की मृत्यु से राक्षस और बानरों के भयभीत होने के कारण सुमाली उन्हें लेकर पाताल लंका में चला गया। कौशिका के गर्भ से उत्पन्न वैश्रवा के पुत्र वैश्रवण को लंका का राज्य देकर इन्द्र अपनी राजधानी को लौट गया।

पाताल लंका में रहते समय सुमाली की प्रीतिमति नामक पत्नी के गर्भ से

रत्नश्रवा नामक एक पुत्र हुआ। बड़ा होने पर वह विद्यासाधना के लिए पुष्पोद्यान में गया। वहाँ चित्र खिचित-सा स्थिर होकर अक्षमाला हाथ में लेकर नाक के अग्रभाग में दृष्टि रखकर वह जप करने लगा। रत्नश्रवा जब इस प्रकार जप कर रहा था तब खूब सुन्दर एक विद्याधर कन्या अपने पिता के आदेश से उसके सम्मुख खड़ी होकर बोलने लगी—'मैं मानव सुन्दरी नामक महाविद्या हूँ। तुमने मुझे प्राप्त कर लिया।' यह सुनकर विद्या सिद्ध हो गयी समझकर रत्नश्रवा ने जपमाला फेंक दी। किन्तु आँख खोलते ही अपने सम्मुख एक विद्याधर कुमारी को खड़े देखकर बोला, 'तुम कौन हो? किसकी कन्या हो? यहाँ क्यों आई हो?' प्रत्युत्तर में वह बोली, 'अनेक कौतुकों का गृहरूप कौतुक मंगल नामक नगर में व्योमबिन्दु नामक एक राजा है। कौशिका नामक उनकी बड़ी लड़की है, वह मेरी बहन है। यक्षपुर के वैश्रवा के साथ उसका विवाह हुआ है। उसके वैश्रवण नामक एक नीतिवान पुत्र है। वह अभी राजा इन्द्र की आज्ञा से लंका में राज्य कर रहा है। मेरा नाम है कैकसी। किसी नैमित्तिक के कहने से मेरे पिता ने मुझे आपको सम्प्रदान कर दिया है। इसीलिए मैं यहाँ आई हूँ। 'सुमाली के पुत्र रत्नश्रवा ने यह सुनकर अपने आत्मीय स्वजनों को बुलवाया और कैकसी के साथ विवाह कर पुष्पोत्तर नामक नगर बसाकर, उसके साथ यौवन सुख भोग करते हुए वहीं रहने लगा।

[ क्रमशः

# संकलन

॥ समाज को स्वावलम्बी एवं आत्मनिर्भर बनावें ॥

जैन समाज में अनेकानेक परिवार निम्न मध्यमवर्गीय परिवार है जिन्हें अपने निर्वाह के लिए कठोर परिश्रम और घोर संघर्ष करना पड़ रहा है। स्वाभिमान बनाये रखकर अपने परिवार का निर्वाह करना इस बढ़ती महंगाई में उनके लिए बहुत कठिन हो रहा है। जो नौकरी पेशे में हैं उनकी हालत तो और भी खराब है।...

आर्थिक स्थिति से पिछड़े समाज के लोगों को समय-समय पर मदद दी जाने के कार्यक्रम देखने-जानने को मिलते हैं। कई स्थानकों एवं फंडों से निभाव फंड के रूप में कुछ रुपये प्रतिमाह बांटे भी जाते हैं। कभी-कभी विशेष लाचारी में समाज के लोग संस्थाओं और व्यक्तियों से सहयोग के लिए पहुँचते हैं तो उनको दया करके लोग सहायता देते भी हैं। हमारा मानना है कि समाज के भाइयों को दया, करुणा के रूप में सहयोग देकर उन्हें भिखारी, याचक अथवा दीन-हीन नहीं बनाया जाय बल्कि इस प्रकार का कुछ ठोस सहयोग किया जाय ताकि वे आत्मनिर्भर बन सकें।

जैन समाज उद्यमी, परिश्रमी और प्रामाणिक है। उसे व्यापार के गुण मां के दूध के साथ ही मिल जाते हैं। अतः यदि हम समाज के पिछड़े लोगों को व्यापार, छोटे उद्योग आदि के लिए ऋण देकर उचित मार्गदर्शन के साथ व्यापार की प्रेरणा दें तो हमारे समाज की आर्थिक स्थिति में सुधार आ सकता है।

एक जमाना था जब राजस्थान से आनेवाले समाज के भाइयों को व्यवसायिक प्रतिष्ठान अपने यहाँ ठहरने, भोजन करने की सुविधा के साथ आर्थिक सहयोग कर उन्हें आर्थिक रूप से योगदान करते थे। आज पुनः उसी भावना को जागृत कर समाज के लोग यदि अपने आसपास के क्षेत्र के ऐसे सामाजिक बन्धुओं को व्याजमुक्त कर देकर स्वावलम्बी बनावें।

—पुखराज एस० लुंकड़ जैन

जैन प्रकाश, नवम्बर १९९१

## जैन पत्र-पत्रिकाएँ—कहाँ/क्या

तीर्थंकर ।। दिसम्बर १९९१

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'अस्तेय और हम' (सुरे बोथरा), 'मैं एक दिन उनके पास रहीं···' (डॉ० स्नेह जैन), 'आदर्श सम की रचना' (डॉ० कमलेश कुमार जैन), 'तीन परिवार : एक चिन्त (कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर') ।

तुलसी प्रज्ञा ।। अक्टूबर-दिसम्बर १९९१

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'आदि कर्तृन् अर्हत् पंचे (डॉ० परमेश्वर सोलंकी), 'संस्कृत वाङ्मय में लोक अवधारणा' (गोप शर्मा), 'जैन-बौद्ध विनय का तुलनात्मक अध्ययन' (डॉ० भागचंद 'भास्कर'), 'जैन नय-न्याय द्वारा तत्त्वार्थ निर्णय' (डॉ० सुषमा सिंघवं 'भारतीय दर्शन की आशावादिता एवं प्रगतिशीलता' (डॉ० जगन्नाथ जो डॉ० कमला पंत), 'वर्षाऽऽवास का इतिहास' (पं० चन्द्रकान्त बाल 'सामान्य प्राकृत भाषा में मध्यवर्ती त=द' (डॉ० के० आर० चन् 'Contribution of German Scholars to Prakrit Studies wi Special Reference to A. Weber' (Dr. B. K. Khadabadi 'Lesya—The Ethical Aspect of an Individual' (Dr. G. Tagore), 'Some Thoughts on Tirukkural' (Dr. B. Khadabadi), 'Jeshub or Reshub : The Arhat' (V. G. Nai

# LODHA MOTORS

A House of Telco Genuine Spare Parts and
Govt. Order Suppliers.
Also Authorised Dealers of Pace-setter and
Nicco Batteries in Nagaland State.

GOLAGHAT ROAD, DIMAPUR
NAGALAND

Phone : 3039, 3174

---

# The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

*Office and Sales Office :*

**BIKANER WOOLLEN MILLS**

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phone : Off. 3204
Res. 3356

*Main Office :*

**4 Meer Bohar Ghat Street**
**Calcutta-700007**
Phone : 38-5960

*Branch Office :*

**Srinath Katra : Bhadhoi**
Phone : 5378
5578,5778

WB/NC 330

~~WB/NC-253~~

**Vol. XV No. 9** **TITTHAYARA** **January 1992**

Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 24582/73